
प्रवचन-१९६, गाथा-१६५, श्लोक २८०-२८१, मंगलवार, आषाढ कृष्ण २, दिनांक २९-०७-१९८०

नियमसार, २८० (श्लोक) ।

व्यवहरण-नयेन ज्ञान-पुञ्जोऽयमात्मा,

प्रकटतर-सुदृष्टिः सर्व-लोक-प्रदर्शी ।

विदितसकलमूर्तामूर्ततत्त्वार्थसार्थः,

स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः ॥२८०॥

श्लोकार्थ :- आहाहा ! ज्ञानपुंज ऐसा यह आत्मा... आत्मा, वह ज्ञानपुंज है। कहने का आशय तो ऐसा है कि ज्ञानपुंज जैसे देखे, वैसे दर्शन भी देखता है। ज्ञानपुंज ऐसा यह आत्मा अत्यन्त स्पष्ट दर्शन होने पर (अर्थात् केवलदर्शन प्रगट होने पर) व्यवहारनय से सर्व लोक को देखता है... केवलदर्शन साथ में है, इसलिए लोकालोक को नहीं देखता, ऐसा नहीं है। केवलदर्शन भी देखता है और केवलज्ञान भी लोकालोक को देखता है। आगे बहुत गाथाएँ ऐसी ली हैं। कोई ऐसा कहे कि दर्शन तो स्व को देखता है और ज्ञान पर को जानता है, तो यह बात विरुद्ध है। ज्ञान जैसे पर को जानता है, और स्व को जानता है... यहाँ तो यह लिया न ?

आत्मा अत्यन्त स्पष्ट दर्शन होने पर (अर्थात् केवलदर्शन प्रगट होने पर) व्यवहारनय से सर्व लोक को देखता है... आहाहा ! व्यवहार में से देखते हैं। तन्मय होकर नहीं। भिन्न होकर देखता है, इसलिए व्यवहारनय। आहाहा ! शिक्षण शिविर आयेगा, तब दूसरा लेंगे। यह तो छोड़ देंगे। सवेरे-दोपहर दोनों लेना है। यह तो अभी चलता है। **व्यवहारनय से सर्व लोक को देखता है...** क्या कहते हैं ? कि ज्ञान सर्व लोक को जानता है, उसके साथ दर्शन भी सर्व लोक को देखता है। आहाहा ! **तथा (साथ में वर्तते हुए केवलज्ञान के कारण) समस्त मूर्त-अमूर्त पदार्थसमूह को जानता है।** आहाहा ! दर्शन केवलज्ञान है, इसलिए साथ में रहा हुआ ज्ञान भेद को नहीं जानता, ऐसा नहीं है। ज्ञान भी सर्व को देखता है। आहाहा ! आ गया। दर्शन भी सर्व को देखता है। ज्ञान और दर्शन दोनों अभेद चीज़ है। जैसे ज्ञानपुंज सर्व को देखे, दर्शन साथ में होने पर भी दर्शन भी सर्व को देखे-जाने। आहाहा !

यह भारी चर्चा है, उसका कारण यह कि तेरे अतिरिक्त किसी परचीज़ को तू स्पर्श भी नहीं करता। तुझमें दर्शन-ज्ञान में भी जो भेद दिखता है कि दर्शन स्व को देखता है, वह भी नहीं है। यह भी ज्ञान पर को जाने और साथ में दर्शन भी पर को देखे। जानन-देखन तेरा स्वभाव है। किसी का करना... आहाहा ! या किसी से अपने में कुछ लेना, ऐसा नहीं है।

केवलज्ञान होने पर सर्व को जाने-देखे। किसी को दे सके कि केवलज्ञान हुआ तो पर को कुछ ले सके, ऐसा है नहीं। केवलज्ञान के साथ दर्शन है तो दर्शन भी, जैसे केवलज्ञान देखता है, वैसे दर्शन भी सर्व को देखता है। आहाहा ! किसी को लेना-देना है नहीं। पूर्ण स्वरूप हुआ तो वह कुछ देता नहीं। केवलज्ञान और केवलदर्शन पूर्ण हुआ तो कोई परमात्मा होकर पर को कुछ दे सकते नहीं। लाभ दे सकते नहीं। आहाहा ! यह बात विशेष करते हैं।

आत्मा परमश्रीरूपी कामिनी का... परमश्री अर्थात् केवलज्ञान की लक्ष्मी, उसकी कामिनी का (मुक्तिसुन्दरी का) वल्लभ होता है। अपने ज्ञान के आनन्द में लीन होता है। केवलज्ञान होने पर केवलदर्शन भी साथ में सर्व को देखता है और पूर्ण परमात्मदशा का बल्लभ होता है। आहा! आया? आत्मा परमशुद्ध है। ऐसी शक्ति हुई कि दुनिया को कुछ भी लाभ होते नहीं? नहीं। अपनी परिणति शुद्ध में लीन है। आहाहा! परमात्मा तीन काल-तीन लोक को जानते हैं। तीन काल-तीन लोक को देखते हैं, तथापि पर को कुछ दे सकें, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! लोगस्स में आता है न? सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु। लोगस्स-लोगस्स। श्वेताम्बर में। अपने भी आता है। दिगम्बर में सामायिक है। सामायिक का पाठ है। प्रचलित नहीं है। पाठ है। उसमें यह सब पाठ है। आहाहा! सर्व को देखते हैं परन्तु किसी को देते नहीं। भाषा ऐसी है कि सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु। हे परमात्मा! आप पूर्ण दशा को प्राप्त हुए तो हमको भी दिखाओ। इसका अर्थ यह कि अपनी प्रयत्नदशा में पुरुषार्थ करके अपनी पर्याय प्रगट करता है, उसे सिद्ध को दिखाओ ऐसा कहने में आता है। कहीं सिद्ध दूसरे को दिखावे या सिद्ध पर को कुछ भी दे, (ऐसा नहीं है)। नमोत्थुणं में यह तो आता है न? तरणतारण, तिन्नाणं तारयाणं। नमोत्थुणं किया होगा या नहीं? उसमें नमोत्थुणं में आता है। तिन्नाणं, तारयाणं, बुद्धाणं, बोहयाणं, मुत्ताणं, मोअगाणं... तिरनेवाला तिरता है और भगवान तारते हैं। तिन्नाणं, तारयाणं, बुद्धाणं, बोहयाणं,... ज्ञान पाता है और सर्वज्ञ उसे ज्ञान प्राप्त कराते हैं। मुत्ताणं, मोअगाणं... आत्मा मुक्त होता है और परमात्मा मुक्ति देते हैं। किया है या नहीं मुखाग्र? नमोत्थुणं? है? यह सब व्यवहार की बात है। ले-दे कौन? आहाहा!

यहाँ तो (मुक्तिसुन्दरी का) वल्लभ होता है। क्या कहते हैं? कि जब अपनी पूर्ण पर्याय प्रगट होती है, तो अपनी शुद्धपरिणति का वल्लभ होता है। दुनिया का वल्लभ होता है और दुनिया को लाभ होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! अपनी शुद्धपरिणति को वल्लभ होता है। आहाहा! राग होता है। जब तक केवलज्ञान न हो, तब तक राग होता है, तो राग होता है, तब तक दर्शन पहले और ज्ञान बाद में, ऐसा भेद पड़ता है। यहाँ वह भेद निकालकर पूर्णता की प्राप्ति होती है, तो अपनी पूर्णता की पर्याय का वल्लभ होता है। वह दुनिया का वल्लभ हो या न हो और दुनिया को कुछ दे सके, यह बात है नहीं। यह १६४वाँ कलश (गाथा) हुआ।

गाथा-१६५

णाणं अप्पपयासं णिच्छयणयएण दंसणं तम्हा ।

अप्पा अप्पपयासो णिच्छय-णयएण दंसणं तम्हा ॥१६५॥

ज्ञान-मात्म-प्रकाशं निश्चय-नयेन दर्शनं तस्मात् ।

आत्मा आत्मप्रकाशौ निश्चयनयेन दर्शनं तस्मात् ॥१६५॥

निश्चयनयेन स्वरूपाख्यानमेतत् । निश्चयनयेन स्वप्रकाशकत्वलक्षणं शुद्धज्ञानमिहा-
भिहितं तथा सकलावरणप्रमुक्तशुद्धदर्शनमपि स्वप्रकाशकपरमेव । आत्मा हि विमुक्तसकले-
न्द्रियव्यापारत्वात् स्वप्रकाशकत्वलक्षणलक्षित इति यावत् । दर्शनमपि विमुक्तबहिर्विषयत्वात्
स्वप्रकाशकत्वप्रधानमेव । इत्थं स्वरूपप्रत्यक्षलक्षणलक्षिताक्षुण्णसहजशुद्धज्ञानदर्शनमयत्वात्
निश्चयेन जगत्त्रयकालत्रयवर्तिस्थावरजङ्गमात्मकसमस्तद्रव्यगुणपर्यायविषयेषु आकाशा-
प्रकाशकादिविकल्पविदूरस्सन् स्वस्वरूपे सञ्ज्ञालक्षणप्रकाशतया निरवशेषेणान्तर्मुखत्वादनव-
रतं अखण्डाद्वैतचिच्चमत्कारमूर्तिरात्मा तिष्ठतीति ।

है ज्ञान निश्चय निज-प्रकाशक इसलिये त्यों दर्श है ।

है जीव निश्चय निज-प्रकाशक इसलिये त्यों दर्श है ॥१६५॥

अन्वयार्थः [निश्चयनयेन] निश्चयनय से [ज्ञानम्] ज्ञान [आत्मप्रकाशं]
स्वप्रकाशक है; [तस्मात्] इसलिए [दर्शनम्] दर्शन स्वप्रकाशक है । [निश्चयनयेन]
निश्चयनय से [आत्मा] आत्मा [आत्मप्रकाशः] स्वप्रकाशक है; [तस्मात्] इसलिए
[दर्शनम्] दर्शन स्वप्रकाशक है ।

टीका : यह, निश्चयनय से स्वरूप का कथन है ।

यहाँ निश्चयनय से शुद्ध ज्ञान का लक्षण स्वप्रकाशकपना कहा है; उसी प्रकार
सर्व आवरण से मुक्त शुद्ध दर्शन भी स्वप्रकाशक ही है । आत्मा वास्तव में, उसने सर्व

इन्द्रिय-व्यापार को छोड़ा होने से, स्वप्रकाशकस्वरूप लक्षण से लक्षित है; दर्शन भी, उसने बहिर्विषयपना छोड़ा होने से, स्वप्रकाशकत्वप्रधान ही है। इस प्रकार स्वरूपप्रत्यक्ष-लक्षण से लक्षित अखण्ड-सहज-शुद्धज्ञानदर्शनमय होने के कारण, निश्चय से, त्रिलोक-त्रिकालवर्ती स्थावर-जंगमस्वरूप समस्त द्रव्यगुणपर्यायरूप विषयों सम्बन्धी प्रकाश्य-प्रकाशकादि विकल्पों से अति दूर वर्तता हुआ, स्वस्वरूपसंचेतन जिसका लक्षण है ऐसे प्रकाश द्वारा सर्वथा अन्तर्मुख होने के कारण, आत्मा निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यचमत्कारमूर्ति रहता है।

गाथा - १६५ पर प्रवचन

अब १६५।

णाणं अप्पपयासं णिच्छयणयण दंसणं तम्हा ।

अप्पा अप्पपयासो णिच्छय-णयण दंसणं तम्हा ॥१६५॥

है ज्ञान निश्चय निज-प्रकाशक इसलिये त्यों दर्श है।

है जीव निश्चय निज-प्रकाशक इसलिये त्यों दर्श है ॥१६५॥

टीका : यह, निश्चयनय से स्वरूप का कथन है। पहले व्यवहार आया। व्यवहार से ज्ञान देखे तो दर्शन भी व्यवहार से देखे। तो जीव भी व्यवहार से देखे। दोनों अभेद है न? आहाहा! यह बहुत वर्णन करने का हेतु ऐसा है कि यह जानन-देखन शक्ति, जानन-देखन की पूर्णता करे। परन्तु इससे कहीं पर को लाभ हो... आहाहा! अपनी पूर्ण परिणति के अतिरिक्त दूसरे को कुछ भी लाभ दे सके, ऐसी चीज़ है नहीं। सिद्ध भगवान परमात्मा होते हैं, तो भी किसी को दे नहीं सकते। आहाहा!

मुमुक्षु : साहूकार लोग गरीब को मदद करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मदद का अभिमान। अभिमान करते हैं। पैसा दूसरे को देते हैं। ऐसा किया... ऐसा किया। (ऐसा अभिमान करते हैं)।

यह तो ज्ञान और दर्शनस्वरूप प्रभु जानन-देखन की उत्कृष्टता को प्राप्त करता है परन्तु जानन-देखन की उत्कृष्टता को प्राप्त होता है तो पर को कुछ दे सके, (ऐसा नहीं है), तो नीचे के प्राणी दे सकें, ऐसा है कहाँ? पूर्ण परमात्मदशा स्वतन्त्र प्रगट हुई और जो दर्शन

स्व को देखे ऐसा व्यवहार से कहा था, वह दर्शन स्व-पर को देखे, वह ज्ञान स्व-पर को जाने। अपने में रहे। पर को कुछ दे सकता या ले सकता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : पर को नहीं देता, इसलिए लोभिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण स्वरूप में लीन है, ऐसा यह लोभिया है। अपने में स्वयं चीज़। यहाँ भी ऐसा है। किसी को ले सके, दे सके (ऐसा नहीं है)। विकल्प करे कि मैंने इतना दिया, इतना लिया। आहाहा! राग आता है परन्तु आत्मा का स्वभाव तो राग को जानने का है। राग को भी जाने। आहाहा! इसका स्वरूप तो जानन-देखन चैतन्यपुंज है। राग आता है, द्वेष आता है, विषय-वासना होती है, उसकी क्रिया भी होती है। छियानवें हजार स्त्रियाँ (होती है) तो भी ज्ञान, ज्ञानरूप रहता है। ज्ञान, वह राग होता है, उसे जानता है। वह राग, विषय-वासना आयी, इसलिए जानता-देखता है, ऐसा भी नहीं है। इस समय ज्ञान ही स्व-पर का प्रकाशक अपने से अपने में उत्पन्न होता है। समझ में आया? राग आया तो राग के कारण राग को जानता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो अपना स्वभाव ही जानने-देखने का है। राग आया तो राग को भी जानता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। बाकी तो ज्ञान की पर्याय स्व-परप्रकाशक अपने से अपने में पर की अपेक्षा बिना उत्पन्न होती है। आहाहा! अब ऐसा मार्ग! एक तिनके के दो टुकड़े नहीं कर सकता। यह सब... बहुत दिनों से आये। कल आहार कराने आये थे। पहले-पहले। आहाहा! शरीर की स्थिति ऐसी है। आहाहा!

केवलज्ञान हो जाए तो रोग नहीं होता और रोग हो, वह रहता नहीं। केवलज्ञान (होने से) पहले सनतकुमार चक्रवर्ती उसी भव में मोक्ष जानेवाले, गलित कोढ़ (हुआ था)। अंगुलियाँ गल जाए। साधु, सन्त छठवें गुणस्थान में आत्मा के आनन्द में लीन हैं, उनके अंग भी गल जाए। खून और माँस गल जाए। सात सौ वर्ष (तक ऐसी दशा रही)। सनतकुमार। आहाहा! छद्मस्थ अवस्था में ऐसी दशा होती है। केवलज्ञान होने के बाद नहीं। पूर्णानन्द का नाथ, वह किसी को दे नहीं, किसी को ले नहीं। शरीर में रोग और उपसर्ग हो नहीं सकते। केवली को कोई रोग या उपसर्ग नहीं है। दूसरा कोई उपसर्ग और परीषह केवली को नहीं कर सकता। केवलज्ञान न हो, तब तक (हो सकता है)। तू अपूर्ण क्यों है? आहाहा! वहाँ से दूसरा परीषह-उपसर्ग निमित्तरूप कहने में आता है। निमित्तरूप। आहाहा!

मुमुक्षु : ग्यारह परीषह...

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्यारह परीषह नहीं। केवली को परीषह नहीं। नाममात्र कथन है। अरे! केवली को क्या, छद्मस्थ को परीषह स्पर्श नहीं करते। यह बात करते हैं न! संयोगी कोई अग्नि, सर्प, बिच्छु का दुःख नहीं है। उसे तो यह शरीर स्पर्श भी नहीं करता, वह इसे स्पर्श नहीं करता और शरीर उसे स्पर्श नहीं करता मात्र उस संयोग पर दृष्टि जाने से अन्दर द्वेष आवे कि ठीक नहीं है। उस द्वेष का वेदन है, संयोग का वेदन नहीं है। आहाहा! नारकी में कितने प्रतिकूल संयोग हैं। ओहो! तो भी उन संयोगों का दुःख नहीं है। संयोग पर लक्ष्य जाए, वहाँ रुक जाता है, उसका यह दुःख है। आहाहा! दूसरी चीज़ तो इसे स्पर्श भी नहीं करती। आहाहा!

इसका महात्म्य तो देखो! केवलज्ञान और केवलदर्शन होवे तब परीषह, उपसर्ग नहीं होते। किसी को ले-दे तो नहीं सकता, परीषह-उपसर्ग नहीं। आहाहा! और रोगादि नहीं। छद्मस्थ है, तब तक चार ज्ञान के धनी मुनि हैं... आहाहा! तो भी शरीर में रोग हो। ऐसी दशा नाश करके जहाँ पूर्ण दशा प्रगट हुई, (वहाँ उसे) रोग नहीं, उपसर्ग नहीं, परीषह नहीं, अल्पता नहीं और साथ में दर्शन भी स्व को देखे, इतना ही नहीं। दर्शन भी साथ में सबको देखे। ज्ञान सर्व को देखता है, वैसे दर्शन भी सर्व को देखता है। आहाहा!

यहाँ अब कहते हैं, निश्चयनय से स्वरूप का लक्षण है। यहाँ निश्चयनय से शुद्ध ज्ञान का लक्षण स्वप्रकाशकपना कहा है;... पर निकाल डाला। है? निश्चयनय से शुद्ध ज्ञान का लक्षण स्वप्रकाशकपना कहा है;... यह स्व-प्रकाशकपना। स्व-पर को जानना, यह स्व-प्रकाशकपना है। अपना स्वभाव ही इतना है कि स्व-पर को जाने तो भी वह स्व-प्रकाशक है। अपने में रहकर स्व-पर को जाने, वह अपना ज्ञान-दर्शन है। आहाहा! निश्चयनय से शुद्ध ज्ञान का लक्षण स्वप्रकाशकपना कहा है; उसी प्रकार सर्व आवरण से मुक्त शुद्ध दर्शन भी स्वप्रकाशक ही है। आहाहा! निश्चय से बात (की है)। जैसे पहले व्यवहार कहा था कि पर को देखता है। उसी प्रकार यहाँ निश्चय से स्व को देखता है। दर्शन भी स्व को देखता है। आहाहा! जैसे ज्ञान पर को नहीं देखता, निश्चय से तो स्व-प्रकाशक है, वैसे दर्शन भी स्व-प्रकाशक ही है। आहाहा!

आत्मा वास्तव में, उसने सर्व इन्द्रिय-व्यापार को छोड़ा होने से, स्वप्रकाशकस्वरूप लक्षण से लक्षित है;... यह क्या कहा? कि पहले जब ज्ञान को स्व-प्रकाशक कहा, फिर

दर्शन को स्व-प्रकाशक कहा तो आत्मा भी स्व-प्रकाशक है। आत्मा भी स्व-प्रकाशक है। आहाहा! निश्चयनय से जैसे अपना ज्ञान अपने को ही प्रकाशित करता है, जैसे दर्शन अपने को देखता है, वैसे आत्मा भी अपने को जानता है। यह गुण की बात की, गुण को धारण करनेवाले की बात की। देखो! आया? आहाहा!

इस प्रकार स्वरूपप्रत्यक्ष-लक्षण से लक्षित अखण्ड-सहज-शुद्धज्ञानदर्शनमय होने के कारण,... शुद्ध ज्ञान-दर्शनमय होने के कारण निश्चय से, त्रिलोक-त्रिकालवर्ती स्थावर-जंगमस्वरूप समस्त द्रव्यगुणपर्यायरूप विषयों सम्बन्धी प्रकाश्य-प्रकाशकादि विकल्पों से अति दूर वर्तता हुआ,... आहाहा! स्वस्वरूपसंचेतन जिसका लक्षण है ऐसे प्रकाश द्वारा सर्वथा अन्तर्मुख होने के कारण,... आत्मा की बात करते हैं। पहले गुण की बात की। आहाहा! इतना महिमावन्त प्रभु अन्दर (विराजता है)। आहाहा! जैसे ज्ञान निश्चय से स्व-प्रकाशक है, दर्शन भी स्व-प्रकाशक है तो उसके गुण का धारक आत्मा भी स्व-प्रकाशक है। आहाहा! यह कहते हैं। अन्त में यह कहा।

ऐसे प्रकाश द्वारा सर्वथा अन्तर्मुख होने के कारण,... आत्मा अन्तर्मुख होने के कारण। है? आत्मा निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यचमत्कारमूर्ति रहता है। आहाहा! उसका गुण जैसे जानना-देखना सम्पूर्ण है। पर को नहीं, अपने को जानता-देखता है; वैसे भगवान आत्मा भी अपने को ही जानता-देखता है, पर को नहीं। आहाहा! आचार्य ने स्वयं अपने लिये यह बनाया है। इसमें यह बात ली है। नियमसार स्वयं अपने लिये बनाया है, उसमें यह विषय लिया है। अखण्ड वस्तु, यह गुण और गुणी अखण्ड है, ऐसा बताना है। कोई गुण भिन्न है और गुणी भिन्न है, ऐसा नहीं है। गुण जैसा कहा है, वैसे आत्मा का कार्य है। यदि व्यवहारनय से गुण को परप्रकाशक कहो तो आत्मा को व्यवहार से पर-प्रकाशक कहो। गुण को निश्चय से स्व-प्रकाशक कहा तो आत्मा भी निश्चय से स्व-प्रकाशक कहा है। आहाहा!

आत्मा निरन्तर अखण्ड-... पूर्ण, अद्वैत—एक चैतन्यचमत्कारमूर्ति रहता है। पर को जानने-देखने में नहीं जाता। वह उपयोग भी पर में नहीं जाता। आहाहा! निश्चय से। व्यवहार से पर के ऊपर लक्ष्य है तो वह जानने में आता है तो व्यवहार कहा। वह व्यवहार असद्भूतव्यवहार है। आहाहा! अन्तर में अपना असंख्य प्रदेश अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द

से खिल उठा है, तो भी पर को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! अन्य में कहते हैं कि परमात्मा होवे तो दूसरे को लाभ दे। आहाहा! यहाँ भक्तों को कष्ट पड़ जाए, भक्तों को कष्ट करने राक्षस आवे तो उन्हें बचाने ईश्वर भी मोक्ष में से चले आते हैं। ऐसा है नहीं। यह बताना है। पूर्ण... पूर्णस्वरूप अपने में है। अनादि से अपने में ही है। पर को कुछ लिया-दिया है नहीं। आहाहा! अपने में विकार करे और विकार टाले। पूर्ण हुआ तो पूर्णानन्द में लीन है। अपनी पूर्ण दशा में आत्मा लीन है। निश्चय से बाहर को देखता है, वह भी व्यवहार से, निश्चय से नहीं। आहाहा! ऐसे आत्मा को यहाँ बहुत काम कराना... आहाहा! मैं बोलता हूँ, मैं खाता हूँ, मैं पीता हूँ, मैं पर का कर्ता हूँ, मैं लिखता हूँ। कहो, जज! यह जज लिखते होंगे या नहीं? कोर्ट में बोलते हैं या नहीं? कनुभाई जज थे न? अहमदाबाद। भाषा-वाषा आत्मा कुछ नहीं कर सकता। दलील नहीं कर सकता। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु!

चैतन्यघन चैतन्यपुंज चैतन्यसागर अपने में डोलता है। आहाहा! डोलता है अर्थात् अपने में परिणमन करता है। परन्तु पर में उसकी कुछ मदद मिले या पर को मदद दे, ऐसा पूर्णानन्द के नाथ परमात्मा में होता नहीं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! यहाँ रहा होने पर भी... ओहोहो! एक यह उठाने का काम आत्मा का नहीं। आत्मा उसे स्पर्श नहीं करता। इस अँगुली स्पर्श नहीं करता और यह अँगुली इसे स्पर्श नहीं करती। ओहोहो!

आत्मा पूर्ण हुआ तो ऐसी कोई शक्ति होगी या नहीं? यह प्रश्न चला है कि आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं, तो उसमें एक शक्ति ऐसी भी होगी कि पर का कुछ कर सके। यह प्रश्न चला है। समझ में आया? संख्या से अनन्त शक्तियाँ अन्दर में हैं, तो एक शक्ति ऐसी भी होगी कि पर का कुछ करे। इनकार करते हैं कि ऐसा नहीं है। अनन्त शक्तियों में ऐसी कोई शक्ति नहीं है। गुण अनन्त हैं। संख्या से आत्मा में अनन्त गुण हैं। परन्तु कोई गुण ऐसा नहीं है कि पर का कर सके। तथा कोई गुण ऐसा नहीं है कि विकार करे। आहाहा! पर का तो कर सकता नहीं परन्तु गुण ऐसा है कि विकार भी नहीं करे। सब अनन्त गुण पवित्र हैं। विकार जो होता है, वह तो पर्याय में अध्धर से निमित्त के आधीन, निमित्त के वश होकर पर्याय में विकार होता है। आहाहा! तत्त्व को समझना अलौकिक बात है। यह कहीं साधारण बात नहीं है। आहाहा! यह यहाँ कहा।

अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यचमत्कारमूर्ति रहता है। चैतन्य स्व-पर को जानता है,

ऐसा कहो तो भी अपने में रहता है। उस स्व-पर का अर्थ स्व ही है। आत्मज्ञान आत्मस्वरूप को जाने, उसका अर्थ आत्मज्ञ ही है। पर में जाता नहीं और पर को देखता नहीं; वह आत्मज्ञ ही है। आहाहा! अब यहाँ पूरे दिन पर के काम करना और मानना कि मैंने यह किया। उसे दिया, लिया, ऐसा देखा, उसे पत्र लिखा। पर को पत्र लिखा बुलाने के लिये तो वह आयेगा। यह सब अभिमान। आहाहा! परमाणु-परमाणु की क्रिया स्वतन्त्र है, उसका अभिमान (करता है), वह भी स्वतन्त्र है। अभिमान करने के लिये स्वतन्त्र है। केवलज्ञान होने पर सब छूट जाता है। पर का तो पहले से कर नहीं सकता परन्तु अपने में गुण विकाररूप नहीं होता परन्तु पर्याय में विकार था, वह भी पूर्णानन्द में नहीं है। पूर्णानन्द अपने में चैतन्य चमत्कार। **चैतन्यचमत्कारमूर्ति रहता है।** पर का कर्ता है, पर को मदद करता है या भगवान की धुन लगावे... णमो सिद्धाणं... णमो सिद्धाणं... णमो सिद्धाणं... बहुत धुन लगावे तो सिद्ध कोई मदद करे, (ऐसा नहीं है)। आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्य तो बाँधता है न? सिद्ध भगवान को स्मरण करने से पुण्य तो बाँधता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव। वह तो शुभभाव है। शुभभाव को घोर संसार कहा। उसमें है। कहीं लिखा है। विशेष.. विशेष.. क्या है वह देखा है, हों! कहाँ हो, यह खबर नहीं पड़ती। घोर संसार आया, लो! यह पृष्ठ ३०। देखो! ३० पर है न? **घोर संसार के मूलरूप समस्त सुकृत और दुष्कृत को, सुख और दुःख को अत्यन्त परिहरो।** आहाहा! क्योंकि वह घोर संसार है। वह अन्यत्र कहीं आया है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार, वह घोर संसार है। शुभभाव को ऐसा कहा है। हाथ नहीं आया। लिखा है, ऐसी खबर है। सुकृत और दुष्कृत कहते हैं न! संसार का मूल। आहाहा! भेदों के ज्ञान को पाकर भव्य जीव घोर संसार के मूलरूप सुकृत और दुष्कृत को, **सुख और दुःख को अत्यन्त परिहरो।** आहाहा! यह दूसरी जगह है। उसमें आया नहीं। लिखा अवश्य था। अनन्त संसार।

मुमुक्षु : पृष्ठ ३०...

पूज्य गुरुदेवश्री : पृष्ठ ३०? १८वाँ कलश? उसमें है। यह तो घोर संसार। यह

लो, उसमें आया। यहाँ १८वें कलश में आया न? मूल पाठ है, लो! 'घोरसंसारमूलम्।' है? १८वाँ कलश। ३० पृष्ठ। यह शुभभाव 'घोरसंसारमूलम्।' अर्थकार ने बराबर नहीं किया। संसार का मूल है, ऐसा कहा। संसार का मूल। दूसरी जगह घोर संसार का मूल (कहा है)। शुभराग, यह भगवान की भक्ति का राग, वह घोर संसार का मूल है। यहाँ देखो न, कहा न 'घोरसंसारमूलम्।' 'इति निगदितभेदज्ञानमासाद्य भव्यः परिहरतु समस्तं घोरसंसारमूलम्।' आहाहा! १८ है। है। घोर शब्द नहीं डाला। इसमें है। है, यह रहा।

इस प्रकार कहे गये भेदों के ज्ञान को पाकर भव्य जीव घोर संसार के मूलरूप समस्त सुकृत और दुष्कृत को... सुकृत को घोर संसार का मूल (कहा)। १८वाँ कलश। कलश-कलश। ३०वाँ पृष्ठ। मूल पाठ में नीचे अर्थ में। मूल था, वह घोर ऐसा रह गया। दब गया। इस प्रकार कहे गये भेदों के ज्ञान को पाकर भव्य जीव घोर संसार के मूलरूप समस्त सुकृत और दुष्कृत को... समस्त। इसमें अमुक शुभभाव ऐसा... यह पाठ है। सुकृत और दुष्कृत को, सुख और दुःख... घोर संसार का मूल है। आहाहा! लोग बेचारे शोर मचाते हैं कि सोनगढ़वाले यह क्या कहते हैं?

शुभभाव हो या अशुभ हो, प्रभु! चैतन्य से विरुद्ध है। जबकि चैतन्य अमृत का सागर है, तब यह (शुभाशुभ) दुःखरूप है, घोर संसार है। आहाहा! सुकृत और दुष्कृत दोनों घोर संसार है। पंच महाव्रत घोर संसार है। आहाहा! शोर मचाते हैं। पंच परमेष्ठी का स्मरण शुभराग घोर संसार का मूल है। आहाहा! ऐसी कठिन बात है। वह घोर हाथ नहीं आता था। आहाहा! वह तो शुभभाव में मस्त रहे। पूरे दिन शुभभाव। परन्तु वह घोर संसार का मूल है। आहाहा! ऐसा तो कठिन लगे, बाबूभाई! हिन्दी में ऐसा कहने जाए... व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसे माननेवाले को यह कहना कि दुष्कृत और सुकृत, सुख और दुःख घोर संसार का मूल है। आहाहा!

एक ओर भगवान आनन्दस्वरूप, एक ओर पुण्य और पाप जहर। आहाहा! वह घोर संसार का मूल है और आत्मा मुक्ति का मूल है। आत्मा के परिणाम कहो या आत्मा मुक्तस्वरूप ही है। आत्मा मुक्तस्वरूप ही है और वह मुक्ति का मूल है। और पुण्य-पाप वह संसार का—घोर संसार का मूल है। आहाहा! ऐसा लोगों को कठिन लगता है। दूसरे बहुत बोल हैं, पूरा पृष्ठ लिखा है। आहाहा!

श्लोक - २८१

[अब, इस १६५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रांता)

आत्मा ज्ञानं भवति नियतं स्वप्रकाशात्मकं या,
दृष्टिः साक्षात् प्रहत-बहिराल-बना सापि चैषः ।
एकाकार-स्व-रस-विसरापूर्ण-पुण्यः पुराणः,
स्वस्मिन्नित्यं नियतवसतिर्निर्विकल्पे महिम्नि ॥२८१॥

(वीरछन्द)

निश्चयनय से आत्मा है यह स्व-प्रकाशक ज्ञान स्वरूप ।
और आत्मा बाह्यालम्बन नाशक जो दर्शन उसरूप ॥
एकाकार स्वरस विस्तार सुपूर्ण अतः पुराण पावन ।
निर्विकल्प महिमा में निश्चित वास करे नित यह आत्म ॥२८१॥

[श्लोकार्थः —] निश्चय से आत्मा स्वप्रकाशक ज्ञान है; जिसने बाह्य आलम्बन नष्ट किया है ऐसा (स्वप्रकाशक) जो साक्षात् दर्शन उस-रूप भी आत्मा है । एकाकार निजरस के विस्तार से पूर्ण होने के कारण जो पवित्र है तथा जो पुराण (सनातन) है, ऐसा यह आत्मा सदा अपनी निर्विकल्प महिमा में निश्चतरूप से वास करता है ।२८१ ।

श्लोक -२८१ पर प्रवचन

[अब, इस १६५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

आत्मा ज्ञानं भवति नियतं स्वप्रकाशात्मकं या,
दृष्टिः साक्षात् प्रहत-बहिराल-बना सापि चैषः ।

एकाकार-स्व-रस-विसरापूर्ण-पुण्यः पुराणः,
स्वस्मिन्नित्यं नियतवसतिर्निविकल्पे महिम्नि ॥२८१॥

श्लोकार्थ : आहाहा! निश्चय से आत्मा स्वप्रकाशक ज्ञान है;... आहाहा! ज्ञान स्व-प्रकाशक है। पर का प्रकाशक कहना, वह तो निमित्त से असद्भूतव्यवहारनय से कथन है। आहाहा! यहाँ तक जाना। अभी यहाँ तो दया पालो, ब्रत करो, शास्त्र बनाओ, उससे कल्याण होगा। आहाहा! अखबार में बहुत आता है। अमुक पण्डित ने यह पुस्तक बनायी। अभी आया था। उसे यह ईनाम दिया, वस्त्र दिये, एक हजार रुपये दिये। यह फूलचन्दजी ने माँगा है। ये कैसे सागर? विद्यासागर। वहाँ गये तब उन्हें हजार रुपये दिये थे। सामने रखे। लोग बाहर के मान और अभिमान में प्रसन्न-प्रसन्न हो जाते हैं। आहाहा!

यहाँ तो यह कहते हैं, देखो! निश्चय से आत्मा स्वप्रकाशक ज्ञान है;... आहाहा! पर-प्रकाशक जो है, वह स्व-प्रकाशक ही है। वह तो पर के नाम की अपेक्षा ली है। बाकी स्व-परप्रकाशक अर्थात् निश्चय से स्व-प्रकाशक ही है। आहाहा! पर को जानता नहीं। निश्चय से पर को जानता नहीं। आहाहा! पर को करता तो नहीं, किसी भी पर की रचना तो करता नहीं परन्तु पर को जानता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। निश्चय से आत्मा स्व-प्रकाशक ज्ञान है। आहाहा! जिसने बाह्य आलम्बन नष्ट किया है ऐसा (स्वप्रकाशक) जो साक्षात् दर्शन... अब दर्शन में लेते हैं। दर्शन (भी स्वप्रकाशक ही है) उस-रूप भी आत्मा है। आहाहा! उस-रूप भी आत्मा है। स्व को देखने पर आत्मा स्व को ही देखता है, उसरूप है वह आत्मा। आहाहा!

एकाकार निजरस के विस्तार से पूर्ण होने के कारण जो पवित्र है... भले दर्शन पर को न देखे, स्व को देखे, तथापि वह एकाकार निजरस के... एकाकार है। आहाहा! स्व-पर देखना, वह स्वरूप एक है। स्व-पर को देखना, वह स्वरूप एक है। स्व-पर को देखना, वह दो (स्वरूप) नहीं है। आहाहा! ऐसी व्याख्या। एकाकार निजरस के विस्तार से पूर्ण होने के कारण (दर्शन भी) जो पवित्र है... ज्ञान जैसे पवित्र है, वैसे दर्शन अपने को देखता हुआ पवित्र है, स्व-प्रकाशक है। आहाहा! निश्चय से आत्मा ने कभी पर के सामने देखा नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

भगवान आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन के अतिरिक्त, उसे भी देखना वह व्यवहार है।

अपने को देखने के अतिरिक्त पर को देखना है ही नहीं। पर को देखने का है नहीं तो पर का कर्ता तो कहाँ रहा? आहाहा! एक अक्षर बनाऊँ, अनन्त परमाणु की पर्याय का कर्ता आत्मा बिल्कुल नहीं है। आहाहा! उस समय में अक्षर की पर्याय होनेवाली थी। क्रमबद्ध में इस परमाणु की पर्याय होनेवाली थी। आत्मा पर का कुछ कर सकता नहीं। आहाहा! पर का तो नहीं कर सकता, निश्चय से पर को जानता भी नहीं। आहाहा! यहाँ तक जाना। अन्दर दिखता है, यह चीज़ दिखती है न? चीज़ नहीं दिखती, वह अपनी दर्शनपर्याय, ज्ञानपर्याय दिखती है क्योंकि पर को तो स्पर्श नहीं करता। अपने अतिरिक्त पर को तो स्पर्श नहीं करता। आहाहा! आत्मा अपने क्षेत्र में रहकर अपने को देखता-जानता है। आहाहा! अरे! एक भी बोल उसे भी सख्त पूर्णरूप से उसकी प्रतीति होनी चाहिए। एक भाव को यथार्थ देखे तो सब भाव को यथार्थ देखे। आहाहा!

ज्ञान और दर्शन अपना स्वभाव है। उस पूर्ण स्वरूप अपने में अपने को देखना, वह उसका वास्तविक स्वरूप है। पर को देखना वह वास्तविक स्वरूप नहीं है। वह तो व्यवहार है। गजब बात है। तो पर का करना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। अपने आत्मा की क्रिया के अतिरिक्त राग का करना और पर का करना तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! निष्क्रिय हो जाना? निष्क्रिय है। हो जाना कहाँ? आहाहा! पर का कर्ता तो है ही नहीं। पर को जाने, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। निश्चय से तो है ही नहीं। आहाहा! क्योंकि पर को जानना, वह तो व्यवहार से कथनमात्र है। कथनमात्र से बोलने में आता है। दूसरी कोई बात है नहीं। आहाहा! अपनी चीज़ अपने में रखकर अपने को देखता है। आहाहा!

अपनी केवलज्ञान की पर्याय और केवलदर्शन की पर्याय स्व-प्रकाशक निश्चय से स्व-प्रकाशक है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, षट्कारक अपनी पर्याय में अपने से करता है। आहाहा! पर का जानना-देखना, वह नहीं। निश्चय से अपना कर्ता पर्याय में, अपना कार्य, अपना साधन, अपना करके स्वयं रखी, अपने से, अपने आधार से। उस केवलज्ञान की पर्याय का षट्कारक अपने से होता है। आहाहा! प्रत्येक द्रव्य की-छहों द्रव्यों की विकारी या अविकारी पर्याय अपने षट्कारक से परिणमित होती है। पर की कोई अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा! यह सब बाहर का तूफान, उसमें महत्ता माने, धमाल करे। यह कोई विरधीचन्दजी हैं। उनका लेख आया है कि प्रतिष्ठा में यह पंच

कल्याणक और यह सब कहाँ से हुआ ? कहाँ से आया ? भगवान की प्रतिष्ठा करे, बस । यह सब पंच कल्याणक और उपाधि और लोग और माता-पिता बनाना । ऐसा लिखते हैं । आहाहा ! उसमें यहाँ का विरोध लिखते हैं । पर का कुछ कर सकता नहीं । व्यवहार से भी लाभ न दे । आहाहा ! बात तो सच्ची । व्यवहार से लाभ है—नुकसान का—विकार का लाभ है । व्यवहार वस्तु में है ही नहीं ।

यहाँ तो कहा न ? पर को देखना व्यवहार से है । अपने को देखना-जानना, वह निश्चय से है । राग को करना और पर को करना, वह तो कहीं रह गया । अरे ! ऐसी बात ! ऐसी विद्यार्थियों को मिली नहीं । मिली थी कहीं ? ऐसी सुनने को मिली नहीं । अभी सुनने को मिले, ऐसा नहीं है । आहाहा ! पर का कुछ कर सकता नहीं । अरे ! पर को जानना, वह भी व्यवहार है । गजब बात है । आहाहा !

ऐसा कहा न ? जो पुराण (सनातन) है... आत्मा ने अपनी पूर्ण पर्याय प्रगट की, वह पूर्ण पवित्र है । वह पुराण है, सनातन है । ऐसा यह आत्मा सदा अपनी निर्विकल्प महिमा में निश्चितरूप से वास करता है । आहाहा ! अपने लिये पुस्तक बनायी, उसमें यह लिखा है । कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने लिये बनाया है । उसमें यह लिखा है कि अपना आत्मा अपनी पर्याय में लीन है, बस । बाहर में कुछ लेने-देने की बात नहीं है । आहाहा ! पर का करना और पर को भोगना, वह तो स्वरूप में है ही नहीं । परन्तु पर को जानना, पर को देखना, वह भी असद्भूत झूठे व्यवहार के कथन हैं । आहाहा ! अपने को अपना आत्मा जाने-देखे, वह भी सद्भूतव्यवहार है । जानना-देखना और आत्मा दो भेद पड़ गये न ? बाकी वह तो ज्ञायक ही ज्ञायक है । बस । ज्ञायक, वह पूर्ण ज्ञायक हुआ तो ज्ञायक रह गया ।

यहाँ तो कहते हैं कि यह आत्मा सदा अपनी निर्विकल्प महिमा... विकल्प नहीं, भेद भी नहीं । आहाहा ! निश्चितरूप से वास करता है । अपनी पर्याय में परमात्मा सादि-अनन्त रहते हैं । कभी विकल्प नहीं उठता और पर का कुछ नहीं करते, पर को जानते हैं ऐसा कहना वह व्यवहार है । निश्चय से अपनी पर्याय में रहते हैं, यह वस्तु का स्वरूप है ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)